International Journal of Creative Research Thoughts
Volume 1, Issue.10, October 2013 ISSN:-2320-2882

ORIGINAL ARTICLE

पुरुषार्थ की संकल्पना एवं जीवन प्रबन्धन

डॉ. मनोज कुमार शर्मा
योग एवं प्राकृतिक चिकित्सक
अतिथि शिक्षक अ.बि.बा.हि.वि.वि.
मध्यप्रदेश भोज मुक्त वि.वि.,भोपामो.

विवेच्य शोध आलेख में भारतीय संस्कृति की पुरूषार्थ की संकल्पना को जीवन प्रबन्धन के आइने में पुनर्परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। जडवादी और भोगवादी दर्शन की कोख से पैदा हुई आधुनिक मैनेजमेंट फिलासफी ने मनुष्य को जहाँ एक तरफ अर्थ पशु बना दिया है, वहीं संयुक्त परिवार, विवाह और नातेदारी जैसी सांस्कृतिक संस्थाओं को भी पतनोन्नमुख किया है। परिणामस्वरूप मनुष्य के वैयक्तिक और सामाजिक जीवन से प्रेम, करूणा, उदारता, क्षमाशीलता, सेवा, सहयोग, सामंजस्य और परस्पर पूरकता जैसे जीवन मूल्य समाप्त होते जा रहे हैं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के रूप में पुरूषार्थ के सम्प्रत्यय न केवल श्रेष्ठ जीवनप्रबन्धन के महामंत्र हैं बल्कि मानव मात्र के लिए अद्यापि ऊर्जास्पद और क्षेमकर हैं।

प्रबन्धन का अर्थ है 'व्यवस्था'। जीवन प्रबन्धन का अर्थ है जीवन की सुव्यवस्था। जीवन जितना ही अधिक व्यवस्थित होगा, जीवन लक्ष्य प्राप्ति उतना ही सहज और सुगम होगी। किसी कार्य की पूर्णता में उससे संबंधित सुप्रबन्धन का महत्व प्राचीन काल से ही रहा है। आज के 'गलाकाट' प्रतिस्पर्धी युग में 'प्रबन्धन'का जादू तो सिर चढ़कर बोल रहा है। बिजनेस मैनेजमेंट, होटल मैनेजमेन्ट, हास्पिटल मैनेजमेन्ट, रूरल डेवलपमेंट मैनेजमेन्ट, कैटरिंग मैनेजमेन्ट, डाइट मैनेजमेन्ट आदि नाना प्रकार के मैनेजमेन्ट वर्तमान का कार्पोरेट जगत तो मैनेजमेन्ट के जादुयी प्रभाव से चमत्कृत है। कभी इस क्षेत्र को इसलिए अछूता छोड दिया जाता था कि इस क्षेत्र में कोई विशष लाभ नहीं होता था। परन्तु इसे कुशल ढंग से निखार लेने पर इसके भी कई आयाम खुल चुके हैं। आज इस व्यवसाय ने एक बड़े उद्योग का रूप ले लिया है और इससे अपार सम्पदा तथा सम्पत्ति का अर्जन हो रहा है।

'हर चीज को उत्पाद बनाकर उसका अधिकतम आर्थिक लाभ कैसे लिया जाय' वर्तमान प्रबन्धन का यह मूल दर्शन है। यहाँ तक कि प्रबन्धन की इस 'फिलासफी' ने मनुष्य को भी एक उत्पाद बनाकर रख दिया है। अन्य वस्तुओं की तरह मनुष्य भी एक रिसोर्स या संसाधन है और उसका अधिकतम उपयोग कैसे हो? वर्तमान 'ह्यूमन रिसोर्स मैनेजमेंट' की यह सबसे बड़ी चिन्ता है। आज की मैनेजमेंट फिलासफी तो नैतिकता के सारे मापदण्डों को तोड़ते हुये भी हमारे व्यावसायिक हित–कम से कम समय में अधिकाधिक धन कमा लेने को प्राथमिकता देती है। कार्पोरेट कल्चर की साम्प्रतिक लाइफ मैनेजमेंट फिलासफी का विद्रूप चेहरा प्रतिष्ठित आई.टी. कम्पनी 'सत्यम्' के 'चेयरमैन' रामलिंगम राज के

Please c ite this Article as : डॉ. मनोज कुमार शर्मा, पुरुषार्थ की संकल्पना एवं जीवन प्रबन्धन : International Journal Of Creative Research Thoughts, Volume 1, Issue.10, october 2013

जीवनवृत्त है। रामलिंगम राजू ने जालसाजी, गबन और धोखाधडी के द्वारा अपार सम्पत्ति अर्जित की। उसने तीन सौ कम्पनियों का जाल विछाया, तिरसठ देशों में मकान और महल खरीदे। एक हजार सूट, 32 जोड़ी जूते, 310 बेल्ट, 1 करोड़ रूपये का टेलिस्कोप और सैकडों करोड के जवाहरात संग्रह किये। मंदिरों में चढ़ावा के रूप में दो टन से अधिक सोना दान में दिया।[1]

आज पूरी दुनिया अर्थ प्रधान हो गयी है और सारी मानवता अर्थ लोलुप। धन, पद, सस्ता और शक्ति जैसे मूल्य विकास के पैमाने, योजनाओं की रूप रेखाएं तथा परिकल्पनाओं के आधार बन गये हैं। सारी दुनिया, सारा जीवन, सारे सम्बन्ध बस इसी के इर्द गिर्द घूमते और इन्हीं से संचालित होते है। आज के प्रबन्धन का यह बाजारीकरण और व्यावसायीकरण उस लोमहर्षक जमाने की याद दिला देता है जब मनुष्यों को भी अन्य उत्पादों की तरह खुले बाजार में बेचा जाता था। गुलाम प्रथा भले ही मानवीय सभ्यता के विकृत इतिहास की विद्रूप झांकी रही हो परन्तु मानवीय अंगों का व्यापार करने वाले नकली खून एवं नकली दवाओं का गोरखधंधा करने वाले, नरपिशाच व्यावसायियों ने आज उसी आदिम जमाने की याद तरो ताजा कर दी है।

व्यावसायीकरण की यह सोच और उसे बुलंदियों पर पहुंचाने वाली भोगवादी दर्शन की कोख से पैदा हुई आधुनिक मैनेजमेंट फिलासफी ने मनुष्य के केवल व्यावसायिक जीवन में ही जहर घोलने का कार्य नहीं किया है बल्कि मानवीय संबंधों, उसके तान बाने से निर्मित सामाजिक संस्थाओं को भी रसातल में पहुंचा दिया है। आज वैयक्तिक जीवन में बढ़ता तनाव, दरकता दाम्पत्य, जीवन और समाज में बढ़ती हिंसा और अपराध व्यक्ति, परिवार और टूटते समाज का विकृत आइना है। गृहस्थ एक तपोवन है, सहजीवन है और है प्यार के आदान–प्रदान पर आधारित एक लघु प्रजातन्त्र। यह हमारी संस्कृति की वह आदर्शतम व्यवस्था थी जहॉ व्यक्ति सेवा, सहयोग, सामन्जस्य, परस्पर पूरकता, प्रेम और सद्भाव का प्रथम पाठ मॉ के चुबन और पिता के दुलार से सीखता था। पर न जाने भोगवादजन्य व्यवसायवाद की कैसी नजर न लगी इसे कि यह सब टूट टूट कर तार तार होता देखा जा रहा है। हिन्दू वैवाहिक संस्था –जहॉ सात–सात जन्मों तक साथ – साथ जीने और मरने की कसमें खायी जाती थी आज मूल्यहीन हो चुकी हैं। तभी तो 'बिन फेरे हम तेरे' और 'समलैंगिक सम्बन्धों' को कानूनी मान्यता दी जा रही है। मेरी समझ से मानवीय सभ्यता के समक्ष विद्यमान यह नैतिक संकट, किसी भी आणविक संकट से कम नहीं है। इस अर्थ केन्द्रित दर्शन की विभीषिका पर नजर डालते हुये प्रसिद्ध समाज वैज्ञानिक सच्चिदानंद सिन्हा लिखते हैं – ''बीसवी सदी की तरह 21वीं सदी में दुनिया का सबसे बड़ा अनिष्ट जिस शास्त्र से होने की सम्भावना है वह है 'अर्थशास्त्र'। जो दरसल शास्त्रों की बुनियादी मात्रा के हिसाब से कोई शास्त्र है ही नहीं।'' अर्थशास्त्र बिना इसकी सत्यता की परीक्षा किये यह आधार अपनाता है कि आदमी के कार्यकलाप लोभ एवं ईर्ष्या से परिचालित होते है। इतना ही नहीं आदमी को आर्थिक आदमी मान लिया जाता है जिसके ये आदर्श गुण माने जाते हैं। यह अपेक्षा की जाती है कि हर व्यक्ति इन्हीं आदर्श गुणों – यानी लोभ और ईर्ष्या के अनुरूपव्यवहार करेगा।[2]

अतः आज आवश्यकता है जीवन और जगत को इसके वास्तविक रूप में समझने की साथ ही उसके वैज्ञानिक प्रबन्धन की। अर्थात् जीवन प्रबन्धन को उपभोग और उत्पादन के नैतिकता विहीन अर्थशास्त्र से हटाकर 'वैज्ञानिक अध्यात्मवाद' पर पुर्नप्रतिष्ठित करने की। वैज्ञानिक अध्यात्म में वैज्ञानिक जीवन दृष्टि एवं आध्यात्मिक जीवन मूल्यों का सुखद समन्वय है। 'दरअसल जिसे जड़वादी पदार्थ कहते हैं वह प्रकृति के तमोगुण की एक साधारण सी अभिव्यक्ति है। त्रिगुण मयी प्रकृति के तमोगुण की अभिव्यक्ति पदार्थ रूप में होती है रजोगुण इसमें प्राण या जीवन की सक्रियता का संचार करता है और सत्व गुण से इसमें आध्यात्मिक चेतना की अभिव्यक्ति होती है। इसलिये वैज्ञानिक शोध अनुसंधान प्रयासों में जड़ पदार्थ एवं उनकी भौतिक ऊर्जायें, एवं अन्ततोगत्वा आत्म तत्व व आध्यात्मिक ऊजायें इन सभी का समावेश होना चाहिए।[3]

जीवन और जगत को उसकी पूरी गरिमा और पूर्णता के साथ स्थापित करती हुई ईसावास्योपनिषद के युग द्रष्टा ऋषि की निम्नोक्त आर्षवाणी वैज्ञानिक आध्यात्मवाद की सहज अभिव्यक्ति है –

ईसावास्य मिदं सर्वम् यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम्।।[4]

सत्यं, शिवम्, सुन्दरम् की उक्त अभिव्यक्ति में न भौतिकवाद की अवहेलना है और न आध्यात्मिकता की उपेक्षा।

कठोपनिषद एवं ईसावास्योपनिषद में व्यक्ति और अर्थ के संबंध की व्याख्या निम्नानुसार की गई है –

न साम्परायः प्रतिभाति बालं, प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढ़म्।
अयं लोको नास्ति परा इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे।[5]

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा आवृताः।
तास्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्मनो जनाः।[6]

भर्तृहरि ने वैराग्य शतक में लिखा है –

तृष्णा न जीर्णाः वयमेव जीर्णाः
भोगा न भुक्ताः वयमेव भुक्ताः

अर्थात् तृष्णा बूढ़ी नहीं होती हम ही बूढ़े हो जाते हैं। भोग नहीं भोगे जाते हम ही भोग लिये जाते हैं।

महान चिंतक बेंजामिन फेंकलिन के निम्न भावोद्‌गार उक्त औपनिषद ज्ञानामृत का ही प्रकाशन है– आदर्श पूंजीपति उद्यमी वह व्यक्ति है जो फिजूलखर्ची और प्रदर्शन की लिप्सा से बचकर अपना व्यवसाय निष्ठा और ईमानदारी के साथ करे। इन सिद्धान्तों के विपरीत जब कोई पूंजीपति अपनी शान्ति और संतुष्टि को भौतिक पदार्थों के संग्रह से जोड़ लेता है और फिजूलखर्ची में धन उड़ाकर खुशहाली प्राप्त करना चाहता है तब वह अपना अनिष्ट तो करता ही है साथ ही समाज और देश का भी अहित करता है।[7]

स्पष्ट है – आज के संकट का मूलभूत कारण सच्ची जीवन दृष्टि का अभाव है। आधुनिक समाज की ज्वलंततम समस्याएँ– हिंसा, अनाचार, अनैतिकता, भोगवाद, बाजारवाद, साम्राज्यवाद, विखण्डनवाद और भूमण्डलवाद आदि सबों के मूल में भौतिक सुख प्राप्ति की कामना है जो भोगवादी चिंतन और भोगवादी दृष्टि का परिणाम है। निष्कर्ष रूपेण हम कह सकते हैं कि कार्पोरेट जगत की जीवन दृष्टि एकांगी और आत्मघाती है। फलतः उनका जीवन प्रबन्धन एक पक्षीय है जिसने मनुष्य को अर्थपशु बनाकर रख दिया है।

'लाइफमैनेजमेन्ट' आज के कार्पोरेट जगत का 'ब्रांडेड' नाम भले ही हो परन्तु इसका दर्शन और इसकी विस्तृत रूपरेखा 'पुरूषार्थचतुष्टय' की संकल्पना के रूप में हमारी आध्यात्मिक संस्कृति में बहुत प्राचीन काल से विद्यमान रही है। भारतीय मनीषियों ने जीवन लक्ष्य को चतुपुरूषार्थों – धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के रूप में निम्नानुसार विवेचित किया है – भारतीय आचार शास्त्र में सबसे महतवपूर्ण प्रत्यय धर्म है। नीतिज्ञों और विद्वानों द्वारा समय समय पर धर्म को अनेक प्रकार से परिभाषित किया गया है। सर्वमत के परिप्रेक्ष्य में यदि हम धर्म को परिभाषित करना चाहें तो कह सकते हैं कि वे समस्त कर्तव्य जिससे प्राणिमात्र का पालन और संरक्षण होता है 'धर्म' कहलाता है। महर्षि कणाद के अनुसार जिससे लौकिक (भौतिक जगत) और पारलौकिक (आध्यात्मिक) उन्नति प्राप्त हो उसे धर्म कहते हैं। इस प्रकार धर्म जहॉ एकतरफ भौतिक जगत में विकास का कारक है वहीं वह मनुष्य की नैतिक और आध्यात्मिक अभ्युदय को भी सुनिश्चित करता है। महात्मा मनु ने धर्म की व्याख्या करते हुये उसके दस लक्षणों का निरूपण किया है –

धृतिः क्षमा दमोस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधोदशकं धर्म लक्षणम्।।[8]

वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में यदि हम धर्म के उपर्युक्त समस्त लक्षणों को आत्मसात कर लें तो श्री अरविन्द के शब्दों में 'मानव जीवन को अतिमानस के स्तर पर पहुंचाया जा सकता है और मानव सभ्यता को दैवी सभ्यता के रूप में प्रतिष्ठित किया जा सकता है। मात्र इन्द्रिय निग्रह और अस्तेय

का पालन करके वैयक्तिक और सामाजिक जीवन से काम, क्रोध, लोभ, मोह, हिंसा, अनैतिकता, व्यभिचार और भ्रष्टाचार को सदा – सर्वदा के लिये समाप्त किया जा सकता है।

अर्थ या धनोपार्जन को द्वितीय पुरूषार्थ के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त है। भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति में लौकिक जीवन तथा लौकिक अभ्युदय की कभी भी उपेक्षा नहीं की गयी है। 'शरीरमाद्यं धलु धर्म साधनम्' कहकर जहॉ साधकों ने शरीर को धर्म का आदि साधन बतलाया है वहीं अर्थ को धर्म और काम दोनों का मूल माना। 'अर्थ मूलौ धर्म कामो–कौटिल्य अर्थशास्त्र। धनात् धर्मः ततः सुखम्।।'

चाणक्य ने तो यहॉ तक कहा है कि निर्धन व्यक्ति का जीवन मृत्यु के समान है। निर्धनव्यक्ति के लिए सुन्दर नगर भी श्मशान है तथा धनवान के लिये जंगल भी राजधानी के समान है। ''दारिद्रय खलु पुरूषस्य मरणं''[9]

धन को इतनी महत्ता प्रदान करते हुये भी भारतीय आर्ष संस्कृति में अर्थोपार्जन को धर्म से नियंत्रित किया गया है। महाप्राण बुद्ध ने 'सम्यक् आजीव' तथा महावीर स्वामी ने अपरिग्रह एवं निवृत्तमार्गी आचार्य शंकर ने 'नित्यानित्य वस्तु विवेक' 'शमदमादिसाधनसंपत्' के उपदेश द्वारा मनुष्य की अर्थोपार्जन की पिपासा को धर्म द्वारा नियन्त्रित किया। धर्म विहित अर्थोपार्जन की तो बात ही छोड दें, हमारी देव संस्कृति में तो उपार्जित अर्थ का उपभोग भी धर्मपूर्वक किये जाने का विधान किया गया है।

'अर्थ का एक अंश धर्म के लिए, दूसरा अंश यज्ञ के लिए, तीसरा अंश धन की वृद्धि के लिए, चौथा अंश भोग के लिये और पांचवा अंश स्वजनों के लिये व्यय होना चाहिये।[10]

'अध्यात्म के नियंत्रण में भौतिकता का उन्नयन' कितनी अनूठी आर्थिक व्यवस्था है हमारी आर्ष संस्कृति में। विज्ञान और अध्यात्म का यह मिलन बिन्दु किसी भी संस्कृति के लिये अद्यापि क्षेमकर है।

काम पुरूषार्थ की व्याख्या करते हुये महाभारत में कहा गया है– पांच ज्ञानेन्द्रियॉ, मन और बुद्धि के साथ उनका जो विषयों के साथ संबंध होता है और उस संबंध में जो आनंद या सुख उत्पन्न होता है वही काम है।[11]

आज जीवन में चतुर्दिक फैले दुःखों का मूल कारण लोभ और अनियन्त्रित भोग है। जो भोग और वासनायें भौतिक जगत में सृजन/विकास का मूल कारण हैं, वहीं अनियन्त्रित हो जाने पर व्यक्ति और समाज के पतन का हेतु भी बन जाती हैं। इसीलिये तो धर्मप्राण भारतीय संस्कृति में धर्म नियन्त्रित काम को यज्ञ तुल्य महत्ता प्रदान की गई है। धर्मपोषित काम को ईश्वर रूप माना गया है। 'धर्माविरूद्धो भूतेषु कामोस्मि भरतर्षभ्' ।12

पुरूषार्थ के रूप में भारतीय संस्कृति की यह व्यवस्था जीवन का वह पूर्णतावादी दृष्टिकोण है जहॉ न तो भोग की प्रदीप्त जठराग्नि है और न वैराग्य का दावानल। यह सांसारिकता या भौतिकता का

विनाश नहीं है बल्कि अध्यात्म के नियन्त्रण में भौतिकता का उन्नयन है। मानवात्मा को दिव्यात्मा के रूप में प्रतिष्ठित किये जाने का शिव संकल्प है।

भारतीय संस्कृति में मोक्ष को परम पुरूषार्थ के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है। संसार तथा सांसारिक वस्तुओं के स्वरूप का अज्ञान ही हमारे समस्त दुःखों का मूलकारण है। इसी अज्ञानता से छुटकारा पाना मोक्ष है। ऋते ज्ञानान्मुक्तिः। यहॉ उल्लेखनीय है कि मोक्ष अकर्मण्यावस्था नहीं है। बल्कि यह पद्मपत्रमिवाम्भसा की स्थिति है। जहॉ पर व्यक्ति समस्त कर्मों को करता हुआ भी निर्विकार, निर्लिप्त रहता है।मोक्ष की इस अवस्था को प्राप्त कर लेने पर व्यक्ति धर्म, रूप, रंग, लिंग, भाषा, वेशभूषा आदि समस्त भेद–प्रभेदों से ऊपर उठकर चराचर में आत्मैक्य भाव देखता हुआ लोक संग्रहार्थ कर्म करता है। 'मोक्ष मानव का लक्ष्य है। यह व्यक्तिगत मोक्ष या व्यक्तिगत रूप में दिव्यता प्राप्त करने में नहीं है। श्री अरविन्द का दिव्य पुरूष अपनी मुक्ति के साथ साथ अपनी दिव्यता के साथ–साथ सर्वमुक्ति या 'दि डिवाइन लाइफ ऑन अर्थ' की कामना करता है।[13]

बीसवीं सदी के दार्शनिक ओशो भी कहते हैं – परमात्मा और संसार में फासला नहीं है। यह एक ही चीज के दो ढंग हैं, सृष्टि और स्रष्टा दो नहीं, सृष्टि स्रष्टा का ही फैलाव है।[14]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के रूप में पुरूषार्थ के सम्प्रत्यय मानव मात्र के लिये अद्यापि ऊर्जास्पद और क्षेमकर हैं। अतः जीवन प्रबन्धन के परिप्रेक्ष्य में, जीवन लक्ष्य निर्धारण के सन्दर्भ में चतुर्परूषार्थ की संकल्पना सर्वथा आचरणीय है।

संदर्भ सूची

1. दैनिक समाचार पत्र 'आज'18 सितम्बर 2009
2. सच्चिदानंद सिन्हा –इक्कीसवीं सदी का समाजः सम्भावना और चुनौती। वागर्थ अंक 75 सितम्बर 2001 पृ. 78
3. अखण्ड ज्योती जुलाई, 2009, पृ.7
4. ईसावास्योपनिषद् – गीताप्रेस गोरखपुर (उ0प्र0)
5. कठोपनषिद 1/2/6 गीताप्रेस गोरखपुर (उ0प्र0)
6 ईसावास्योपनिषद– मन्त्र 3, गीताप्रेस गोरखपुर (उ0प्र0)
7. दैनिक समाचार पत्र 'आज' शुक्रवार 18 सितम्बर, 2009
8. मनुस्मृति – 6/92
9. चाणक्य सूत्र 4/58
10 श्रीमद्भागवत पुराण – 11/23, 18/19
11 डॉ0 बद्रीनाथ सिंह – नीतिशास्त्र प्रकाशक – स्टूडेन्ट्स फ्रेण्ड्स एण्ड कम्पनी,लंका वाराणसी – 5 पृ.395
12. श्री मद्भगवद्गीता – गीताप्रेस गोरखपुर (उ0प्र0) 7/11
13 रमेशचन्द्र सिन्हा एवं विजय श्रीचन्द्र– समकालीन भारतीय चिंतक पृ. 53 जानकी प्रकाशन, पटना।
14 ओशो– 'कस्तूरी कुंडल बसै' पृ. 286 ताजो पब्लिसिंग प्रा0 लिमिटेड, 501 पूना – 911001